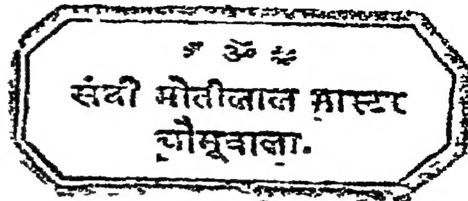




नमः सिद्धेभ्यः

अथ दशलाक्षणिकधर्मपूजा प्रारभ्यते.



श्लोक ।

उत्तमक्षान्तिमाद्यन्तब्रह्मचर्यसुलक्षणम् ।
स्थापयेद्दशधा धर्ममुत्तमं जिनभाषितम् ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्म्म अत्रावतरावतर । संवौषट् । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्म्म अत्र तिष्ठ, तिष्ठ । ठः ठः । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्म्म अत्र मम सन्निहितो भव, भव । वषट् ।

अथाष्टकम् ।

प्रालेयशैलशुचिनिर्गतचारुतोयैः
शीतैः सुगन्धसहितैर्मुनिचित्ततुल्यैः ।
सम्पूजयामि दशलाक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

श्रीचन्दनैर्बहलकुङ्कुमचन्द्रमिश्रैः
संवासवासितदिशामुखदिव्यसंस्थैः ।
सम्पूजयामि दशलाक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

शालीयशुद्धसरलामलपुण्यपुञ्जै-
रम्यैरखण्डशशिलाञ्छनरूपतुल्यैः ।
सम्पूजयामि दशलाक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

मन्दारकुन्दवकुलोत्पलपारिजातैः
पुष्पैः सुगन्धसुरभीकृतमूर्द्धलोकैः ।
सम्पूजयामि दशलाक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय पुष्पाणि निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अत्युत्तमै रसरसादिकसद्यजातै-
नैवेद्यचित्तपरितोपितभव्यलोकैः ।
सम्पूजयामि दशलाक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय नैवद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

दीपैर्विनाशितसमस्ततमोवितानैः
कर्पूरवर्तिकनकोज्ज्वलभाजनस्थैः ।
सम्पूजयामि दशलाक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

कृष्णागुरुप्रभृतिसर्वसुगन्धद्रव्यै-
धूपैस्तिरोहितदिशामुखदिव्यधूम्रैः ।
सम्पूजयामि दशलाक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय
धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

पूगैर्लवङ्गकदलीवरनालिकेरै-
र्हृद्घ्राणनेत्रसुखदैः शिवदानदक्षैः ।
सम्पूजयामि दशलाक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्मा-
य फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

पानीयस्वच्छहरिचन्दनपुष्पसारैः
शालीयतन्दुलनिवेद्यसुचन्द्रदीपैः ।
धूपैः फलावलिविनिर्मितपुष्पगन्धैः
पुष्पाञ्जलीभिरपि धर्ममहं समर्चे ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

इति दशलक्षणधर्मपूजा समाप्ता ।



अथ

श्रीमद्रयधुकविविरचिता

सार्थदशलाक्षणिकजयमाला ।

अथ उत्तमक्षमाधर्माङ्गम् ।

येन केनापि दुष्टेन पीडितेनापि कुत्रचित् ।
क्षमा त्याज्या न भव्येन स्वर्गमोक्षाभिलाषिणा ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय गन्धम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय पुष्पम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय चरुम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय दीपम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमधर्माङ्गाय धूपम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय फलम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अर्थ—कहीं पर जिस किसीदुष्टके द्वारा पीड़ा होनेपर भी स्वर्ग और मोक्षके अभिलाषी भव्यजीवको क्षमाका त्याग कभी नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥

उत्तमखम मद्दउ अज्जव सच्चउ पुण सउच्च संजम सुतओ।
चाउ वि आकिंचण भवभयवंचण वंभचेरु धम्म जु अखओ ॥ १ ॥

अर्थ—उत्तमक्षमा उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमसत्य उत्तम शौच, उत्तमसंयम, उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआकिंचन्य और उत्तम-ब्रह्मचर्य ए आत्माके अक्षय धर्म हैं। किसी दुष्टपुरुषके अप् शब्द कहने मारने पीटने शरीरका घात करने पर भी जो क्रोध नहीं करना, कर्मोंका फल जानकर उसको सहना सो उत्तमक्षमा है ॥ १ ॥ मानकपाय (अहंकार) को छोड़कर नम्रीभूत परिणाम होना सो उत्तममार्दव है ॥ २ ॥ मायाकपायके अभाव होते हुए जो सरल परिणामोंका होना वही

उत्तमआर्जव है ॥ ३ ॥ सत्यसंभाषण करना उत्तमसत्य है ॥ ४ ॥ लोभका त्याग करना ही उत्तमशौच है व्यवहारमें स्नानादिक भी शौच कहा है ॥ ५ ॥ छहकायके जीवोंकी रक्षाकरना तथा इन्द्रिय और मनको बशमें करना सो उत्तमसंयम है ॥ ६ ॥ कायोत्सर्गादिक करना उत्तमतप है ॥ ७ ॥ ज्ञानादिक का दान देना उत्तमत्याग है ॥ ८ ॥ बाह्यआभ्यन्तर परिग्रहोंका त्याग करना उत्तम आकिंचन्यधर्म है ॥ ९ ॥ स्त्रीमात्रका त्याग करना अथवा अपने आत्मामें ही लीन होना सो उत्तमब्रह्मचर्य है ॥ १० ॥ इन सबमें उत्तम विशेषण सम्यक्त्वसहित होनेके लिये दिया है ॥ १ ॥

उत्तमखम तिहुलोय य सारी । उत्तमखम जम्मोदहितारी ॥
उत्तमखम रयणत्तयधारी । उत्तमखम दुग्गइदुहहारी ॥ २ ॥

अर्थ—तीनों लोकोंमें उत्तमक्षमा ही सब धर्मोंमें सार है। उत्तमक्षमा

जन्ममरणरूपी समुद्रसे पार करदेनेवाली है। उत्तमक्षमा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इन तीनों रत्नोंके धारन करनेवाली है। जहां उत्तमक्षमा होती है वहां रत्नत्रय होते ही हैं और उत्तमक्षमा नरकादिक दुर्गतिके समस्त दुःखोंको हरण करनेवाली है ॥ २ ॥

उत्तमखम गुणगणसहयारी। उत्तमखम मुणिविंदपयारी ॥
उत्तमखम वुहयण चिंतामणिं। उत्तमखम संपज्जइ थिरमणि ॥३॥

अर्थ—उत्तमक्षमा गुणसमूहोंके साथ रहनेवाली है। अर्थात् उत्तमक्षमाके होनेसे अनेक गुण प्रगट हो जाते हैं। यह उत्तमक्षमा मुनियोंको बड़ी प्यारी है श्रेष्ठमुनिजन इसका पालन करते हैं। यह उत्तमक्षमा विद्वानोंकेलिये चिन्तामणि है अर्थात् चिन्तामणिरत्नके समान इच्छित पदार्थोंकी देनेवाली है। इसीतरह विद्वज्जनोंको उत्तमक्षमासे इच्छित ज्ञानादिक प्राप्त होते हैं। ऐसी यह उत्तमक्षमा चित्तकी एकाग्रता होनेसे

उत्पन्न होती है ॥ ३ ॥

उत्तमखम महिणिज्ज सयलजणि । उत्तमखम मिच्छत्ततमोमणि ॥
जहिं असमत्थह दोस खमिज्जइ । जहिं असमत्थह ण उ रूसिज्जइ ॥४॥
जहिं आकोसणवयण सहिज्जइ । जहिं परदोस ण जणि भासिज्जइ ॥
जहिं चेयणगुण चित्तधरिज्जइ । तहिं उत्तमखम जिण भासिज्जइ ॥ ५ ॥

अर्थ—यह उत्तमक्षमा समस्त लोकमें पूजित है और मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिये मणिके समान है । जैसें प्रकाशमान मणिसे अन्धकार दूर हो जाता है, उसी तरह उत्तमक्षमासे मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्त्व प्रगट होता है । जहां असमर्थजीवोंके दोष क्षमा किये जाते हैं जहां असमर्थोंके ऊपर क्रोध नहीं किया जाता, जहां आक्रोशवचनोंका (गाली गलौज आदिका) सहन किया जाता है, जहां दूसरेके दोष प्रगट नहीं किये जाते और जहां चित्तमें आत्माका

चैतन्यगुण धारण किया जाता है वहां ही उत्तमक्षमा होती है ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ४ ॥ ५ ॥

घत्ता।

इय उत्तमखमजुय णरसुरखगणुय केवलणाण लहेवि थिरु।
हुइ सिद्ध णिरंजण भवदुहभंजण अगणियरिसिपुंगम जि चिरु ॥ ६ ॥

अर्थ—जिसका निरूपण ऊपर कर चुके हैं ऐसी उत्तमक्षमाके धारणकरनेवाले पुरुपको मनुष्य देव और विद्याधर सभी नमस्कार करते हैं और वह अचल केवलज्ञानको पाकर अनेक ऋपियोंमें श्रेष्ठ, संसारके दुःखोंसे रहित होताहुआ निरंजन सिद्ध होता है और वहांके अनन्तसुख अनन्तकालतक भोगता रहता है। इसलिये सबको उत्तमक्षमा सदा धारण करना चाहिये ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांङ्गाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अथ मार्दवधर्माङ्गम् ।

मृदुत्वं सर्वभूतेषु कार्यं जीवेन सर्वदा ।
काठिन्यं त्यज्यते नित्यं धर्मबुद्धिं विजानता ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा—ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय पुष्पं नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय नैवेद्यं नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय दीपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय धूपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय फलं नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अर्थ—जो जीव धर्मबुद्धिको जानते हैं ऐसे जीवोंको उचित है कि वे समस्त जीवोंमें सदा मृदुता रक्खें । अर्थात् अपने परिणाम सदा कोमल रक्खें और कठिन परिणामोंका सदा त्याग करें ॥ २ ॥

मद्दव भवमद्दणु माणणिकंदणु दयधम्महु मूल जि विमलु॥
सव्वहि हिययारउ गुणगणसारउ ति सउ बओसंजम सयलु॥ १॥

अर्थ—यह मार्दवधर्म जन्ममरणरूप संसारका नाश करनेवाला है। मानकषायको सर्वथा दूर करदेनेवाला है। दयाधर्मका मूल कारण है। यह आत्माका एक अक्षय और निर्मल गुण है। समस्त जीवोंका हित करनेवाला है। आत्माके समस्त गुणोंमें सारभूतगुण यही है। इस मार्दवधर्मके होते हुए ही समस्त व्रत और संयम सफल होते हैं॥ १॥

मद्दउ माणकसायविहंडणु। मद्दउ पंचेंद्रियमणदंडणु॥
मद्दउधम्मे करुणावल्ली। पसरइ चित्तमहीहिं णवल्ली॥ २॥

अर्थ—मार्दवधर्म मानकषायको नाश करनेवाला है। तथा पांचों इंद्रिय और मनको निग्रह करनेवाला भी मार्दवधर्म है। इस मार्दवधर्मके प्रभावसे ही इसमनुष्यकी चित्तरूपी पृथ्वीमें नवीन करुणारूप वेल

फैलती है। भावार्थ—अहिंसाधर्मका कारण करुणा है और करुणा मार्दवधर्मसे ही होती है ॥ २ ॥

मद्दउ जिणवरभत्ति पयासइ। मद्दउ कुमइपसरु णिण्णासइ ॥
मद्दवेण बहुविणउ पवड्ढइ। मद्दवेण जिणि वइरु उहड्ढइ ॥ ३ ॥

अर्थ—मार्दवधर्मसे जिनेन्द्रदेवकी भक्ति प्रकाश होती है और मार्दवधर्म कुमतिके प्रसारको नाश करता है अर्थात् मार्दवधर्म होतेहुए कुमति नहीं रहने पाती। दर्शन ज्ञान चारित्र विनय और व्यवहार विनय मार्दवधर्मसे ही वढती है। और मार्दवधर्मसे लोकमें अनेक तरहके वैर भी दूर हो जाते हैं ॥ ३ ॥

मद्दवेण परिणामविसुद्धि। मद्दवेण विहुलोयहु सिद्धि ॥
मद्दवेण दोविहु तउ सोहइ। मद्दवेण णर तिजग विमोहइ ॥ ४ ॥

अर्थ—मार्दवधर्मसे आत्माके परिणाम अत्यन्त निर्मल हो जाते हैं।

मार्दवधर्मसे इसलोक और परलोकसंबंधी कार्यसिद्धि होती है। आभ्यन्तरतप और बाह्यतप दोनों मार्दवधर्मसे ही शोभायमान होते हैं। मार्दवधर्मकी ऐसी महिमा है कि इसके होतेहुए मनुष्य तीनों जगतको मोहित करलेता है ॥ ४ ॥

मद्दउ जिणसासणि जाणिज्जइ। अप्पापरंसरूव भासिज्जइ[1] ॥
मद्दउ दोस असेस णिवारइ। मद्दउ जम्मउअहि उत्तारइ ॥ ५ ॥

अर्थ—एक जैनशासन ही ऐसा है कि जिसमें मार्दवधर्म जानाजाता है अर्थात् दूसरे मतोंमें ऐसे उत्तमधर्मकी गणना भी नहीं की है। इसीके द्वारा आत्माका और आत्मासे भिन्न पुद्गलादिकका स्वरूप जानाजाता और निश्चय किया जाता है। एक ही मार्दवगुणके होनेसे दूसरे समस्त दोष दूर होजाते हैं। यह मार्दवधर्म ही जन्ममरणरूप समुद्रसे

---

१ भाविज्जइ इत्यपि पाठः।

जीवोंको पार कर देता है ॥ ५ ॥

सम्मद्दंसणअंगु मद्दउ परिणामु जि मुणहु ।
इय परियाणि वि चित्ते मद्दउ धम्मउ अमल थुणहु ॥ ६ ॥

अर्थ—यह मार्दवधर्म आत्माका एक परिणाम है और सम्यग्दर्शनका अंग है । इसलिये ऐसा जानकर अपने चित्तमें इस निर्मल मार्दवधर्मको धारण करो और सदा इसकी स्तुति करते रहो ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं मार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अथार्जवधर्माङ्गम् ।

आर्जवं क्रियते सम्यग्दुष्टबुद्धिश्च त्यज्यते ।
पापचिन्ता न कर्त्तव्या श्रावकैर्धर्मचिन्तकैः ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमार्जव-

धर्माङ्गाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय पुष्पं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय नैवेद्यं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय दीपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय धूपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय फलं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

अर्थ—धर्मका चिन्तवन करनेवाले श्रावकोंको उचित है कि वे अपने परिणाम सदा सरल रक्खें और दुष्टबुद्धिका सदा त्याग करें, तथा कभी पापरूप कार्योंका चिन्तवन न करें। यही उत्तमआर्जव धर्म है ॥ ३ ॥

धम्महु वरलक्खणु अज्जव थिरमणु दुरियविहंडणु सुहजणणु ॥
तं इत्थ जि किज्जइ तं पालिज्जइ तं णि सुणिज्जइ खइ जणणु ॥ १ ॥

अर्थ—धर्मका उत्तम लक्षण आर्जव ही है। मन वचन कायकी सरलताका नाम आर्जवधर्म है। यह आर्जवधर्म स्थिरमनसे किया जाता है। समस्त पापोंको दूर करनेवाला और सुखको देनेवाला यह आर्जवधर्म

ही है। इसलिये समस्त कर्मोंके क्षय करनेवाले इस आर्जवधर्मके सेवन करनेकी इच्छा करो, पालन करो, और ध्यानसे सुनो ॥ १ ॥

जारिसु णियचित्तिहि चिंतिज्जइ। तारिसु अणहं पुण भासिज्जइ॥
किज्जइ पुण तारिसु सुहसंचणु। तं अज्जवगुण मुणह अवंचणु॥ २॥

अर्थ—जो जीव जैसा अपने चित्तमें चिन्तवन करै, वैसा ही दूसरेके लिये कहै और फिर वैसा ही करै। उसको ही समस्त सुखोंका संचय करनेवाला वंचकतारहित आर्जवगुण जानो। भावार्थ—सरलपरिणामोंसे मनवचनकायकी एकसी क्रिया करकें जो दूसरेको धोखा नहीं देना वही आर्जव गुण है॥ २॥

मायासल्लु मणहु णिस्सारहु। अज्जवधम्मु पवित्तु वियारहु॥
वउतउ मायाविय हु णिरत्थउ। अज्जउ सिवपुरपंथ हु सत्थउ॥ ३॥

अर्थ—भो भव्यजनो! अपने चित्तसे मायाशल्यको निकालकर इस

पवित्र आर्जव धर्मका विचार करो। मायावी अर्थात् कपट करनेवाले पुरुषके व्रतकरना तपकरना आदि सभी व्यर्थ हैं। और यह आर्जवधर्म मोक्षजानेके लिये सहायक है। भावार्थ—माया एक शल्य है। शल्य बाणको कहते हैं। हृदयमें चुभा हुआ बाण जैसे दुःखदायी होता है, उसी तरह माया भी दुःखप्रदा है। इसलिये मायाको चित्तसे निकाल-कर मोक्षके देनेवाले इस आर्जवधर्मका चिंतवन करो ॥ ३ ॥

जत्थ कुटिलपरिणाम छंडिज्जइ। तहिं अज्जवुधम्म जु संपज्जइ ॥
दंसणणाण सरूव अखंडउ। परमअतिंदिय सुक्खकरंडउ ॥ ४ ॥
अप्पे अप्पहु भवहु तरंडउ। एरिसु चेयणभाव पयंडउ ॥
सो पुण अज्जउधम्महि लब्भइ। अज्जवेण वयरिउ मण खुब्भइ ॥ ५ ॥

अर्थ—जहां कुटिलपरिणामोंका त्याग किया जाता है, वहीं आर्जव धर्म उत्पन्न होता है। अर्थात् कुटिल परिणामोंका त्याग करना ही

आर्जवधर्म है ॥ आत्मामें जो इस चैतन्यके ऐसे प्रचण्डभाव उत्पन्न होते हैं जो कि सम्यग्दर्शनरूप हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, अविनाशीक, अतीन्द्रिय, परमसुखके स्थानभूत हैं और आत्माको इस संसारसे तारनेवाले हैं, वे परिणाम आर्जवधर्मसे ही प्राप्त होते हैं और आर्जवधर्मके होनेसे शत्रुका मन भी क्षोभित हो जाता है। **भावार्थ**—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आर्जवधर्मसे ही प्राप्त होते हैं। यही आर्जवधर्म संसारसे पार कर देनेवाला है और इसलोकमें भी शत्रु आदिकसे बचानेवाला है ॥ ४ ॥ ५ ॥

घत्ता।

अज्जउ परमप्पउ गयसंकप्पउ चिम्मित्तु जि सासउ अभओ।
तं णिरु झाइज्जइ संसउ हिज्जइ पाविज्जइ जइ अचलपओ ॥ ६ ॥

अर्थ—अब निश्चयनयसे आर्जवका स्वरूप कहते हैं कि, संकल्प-

रहित संगरहित नित्य और अभयस्वरूप जो परमात्मा है, वही आर्जव है। ऐसे परमात्माका संशयरहित ध्यान करना चाहिये। इसीके ध्यान करनेसे अचलपद अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है॥ ६॥

ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

अथ सत्यधर्माङ्गम्।

असत्यं सर्वथा त्याज्यं दुष्टवाक्यं च सर्वदा।
परनिन्दा न कर्त्तव्या भव्येनापि च सर्वदा॥ ४॥

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा। ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा। ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा। ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा। ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा। ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा। ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्माङ्गाय धूपं

निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांङ्गाय फलं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अर्थ—भव्यपुरुषको झूठबोलनेका और गाली गलौज आदि दुष्ट-वचनोंका सर्वथा सदा त्याग करना चाहिये और दूसरोंकी निन्दा करनेका त्याग भी सदा करना चाहिये । यही सत्य धर्म है ॥ ४ ॥

दयधम्मह कारण दोसणिवारण इहभव परभव सुक्खयरु ।
सच्चु जि वयणुल्लउ भुवणि अतुल्लउ वोलिज्जइ विसयासघरु ॥ १ ॥

अर्थ—सत्यवचन दयाधर्मके मूलकारण हैं, समस्तदोषोंको दूर करनेवाले हैं, और इस भव तथा परभवमें सुखके देनेवाले हैं । वचनोंमें उत्कृष्टवचन सत्यवचन ही हैं । सत्यवचन संसारमें निरुपमेय हैं अर्थात् सत्यकी तुलना किसीके भी साथ नहीं कर सकते । तथा विश्वासके स्थान-भूत हैं । ऐसे सत्यवचन सदा बोलने चाहिये ॥ १ ॥

सच्चु जि सव्वहधम्मह पहाण। सच्चु जि महियलि गरओ विहाण ॥
सच्चु जि संसारसमुद्दसेउ। सच्चु जि सव्वह मणसुक्खहेउ ॥ २ ॥

अर्थ—सत्यधर्म ही समस्तधर्मोंमें प्रधान धर्म है। इस भूमंडलमें सत्यधर्मका विधान ही उत्कृष्ट कहा है। सत्यधर्म ही संसाररूप समुद्रसे पार होनेके लिये पुल है अर्थात् संसारसे पार करनेका कारण है। और सत्यधर्म ही निखिल जीवोंके चित्तको सुख देनेवाला है ॥ २ ॥

सच्चेण जि सोहइ मणुवजम्म। सच्चेण पवित्तउ पुण्णकम्म ॥
सच्चेण सयलगुणगण महंति। सच्चेण तियस सेवा वहंति।
सच्चेण अणुव्वय महवयाइ। सच्चेण विणासइ आवयाइ ॥ ३ ॥

अर्थ—यह मनुष्यजन्म सत्यधर्मसे ही शोभायमान होता है और सत्यसे ही पवित्र पुण्यकर्मोंका संचय होता है। इस सत्यधर्मसे अन्य समस्तगुणोंका समूह पूज्य गिना जाता है अर्थात् सत्यधर्मके होनेसे

अन्य गुणोंकी महिमा बढ़ती है और इस सत्यधर्मसे ही स्वर्गनिवासी देवगण मनुष्योंकी सेवा करते हैं। इस सत्यधर्मके होते हुए अणुव्रत और महाव्रत पालन हो सकते हैं और सत्यधर्मसे ही समस्त आपत्तियां नाश हो जाती हैं ॥ ३ ॥

हियमिय भासिज्जइ णिच्चभास। णवि भासिज्जइ परदुहपयास ॥
परबाहायर भासहु म भव्व। सच्चु जि तं छंडहु विगइगव्व ॥ ४ ॥

अर्थ—अब व्यवहार सत्यधर्मका स्वरूप कहते हैं कि, भो भव्यजीवो! सदा हितरूप और परिमित वचन कहो। दूसरेको दुःख पहुंचानेवाले वचन कभी मत कहो। और न दूसरेको किसी तरहकी बाधा करनेवाले वचन कहो। गर्व रहित उपर्युक्त वचनोंका त्याग करो, यही सत्यधर्म है ॥ ४ ॥

सच्चु जि परमप्पउ अत्थि इक्क। सो भावहु भवतमदलणअक्क ॥
रुंधिज्जइ मणवयकायगुत्ति। जं खणि फिट्टइ संसार अत्ति ॥ ५ ॥

अर्थ—संसाररूप अन्धकारको नाश करनेके लिये सूर्यके समान एक जो परमात्मा है, वही सत्यधर्म है। ऐसा चिन्तवन करो। और मन वचन कायकी क्रियाका रोकना अर्थात् मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्तिका पालन करना भी सत्यधर्म है। क्योंकि यह गुप्तिरूपधर्म जिस क्षणमें होता है, उसी समयमें संसारके समस्त दुःख दूर हो जाते हैं। यह निश्चय सत्यका स्वरूप जानना ॥ ५ ॥

घत्ता।

सच्चु जि धम्मफलेण, केवलणाण लहेइ जणु।
तं पालहु भो भव्व, भणहु म अलियउइ हु वयणु ॥ ६ ॥

अर्थ—भो भव्य! इस सत्यधर्मके फलसे मनुष्योंको केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है। इसलिये इस सत्यधर्मका पालन करना चाहिये और मिथ्यावचन कभी नहीं बोलने चाहिये ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांङ्गाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अथ शौचधर्माङ्गम् ।

बाह्यमाभ्यन्तरं चापि मनोवाक्कायशुद्धिभिः ।
शुचितेन सदा भाव्यं पापभीतैः सुश्रावकैः ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांङ्गाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांङ्गाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांङ्गाय पुष्पं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांङ्गाय नैवेद्यं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांङ्गाय दीपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांङ्गाय धूपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांङ्गाय फलं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

अर्थ—जो महाश्रावक पापसे भयभीत हैं, उनको मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक बाह्य शरीरादिक और आभ्यन्तर आत्माको सदा उज्वल रखना चाहिये । यही शौचधर्म है ॥ ५ ॥

सउच जि धम्मंगउ तं जि अभंगउ भिण्णंगउ उवउग्गमओ ।
जरमरणविणासणु तिजगपयासणु झाइज्जइ अहणिसि जि धुओ ॥१॥

अर्थ—यह शौचधर्म अभंग धर्मका एक अंग है। शरीरसे भिन्न है अर्थात् यह शौच शरीरादिकके स्नानसे भिन्नरूप है। यह शौचधर्म ज्ञान दर्शनरूप उपयोगस्वरूप है। जन्म जरा मरणादिकका नाश करनेवाला है। और तीनों जगतका प्रकाश करनेवाला है। इसलिये इसधर्मका निश्चयरूपसे अहर्निश ध्यान करना चाहिये ॥ १ ॥

धम्म सउच्च होइ मणसुद्धइ। धम्म सउच्च वयण धणगिद्धइ ॥
धम्म सउच्च लोहु वज्जंतउ। धम्म सउच्च सुतव यहि जंतउ ॥ २ ॥

अर्थ—मनको अत्यन्त शुद्ध रखनेसे यह उत्तम शौचधर्म होता है और यही शौचधर्म शास्त्ररूप धनकी अत्यन्त गृद्धता करनेसे होता है। अर्थात् शास्त्रज्ञानकी वृद्धि होनेसे ही शौचधर्मका पालन होता है।

यह शौचधर्म उसी मनुष्यके होता है, जिसने लोभकषायका त्याग कर-दिया है। और जो श्रेष्ठतप करनेके मार्गमें जा रहा है, उसके यह शौचधर्म होता है ॥ २ ॥

धम्म सउच्च वंभव्वयधारणु। धम्म सउच्च मयट्ठणिवारणु ॥
धम्म सउच्च जिणायमभणणे। धम्म सउच्च सुगुणअणुभणणे ॥३॥

अर्थ—ब्रह्मचर्यव्रतका धारण करना ही शौचधर्म है और ज्ञानमद पूजामद कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीरका मद निवारण करना अर्थात् इन आठों ही मदोंको न करना ही शौचधर्म है। जैन-शास्त्रोंके पठन पाठन करनेसे शौचधर्मका पालन होता है। और उत्तम उत्तम गुणोंके मनन करने व विचार करनेसे शौचधर्म होता है ॥ ३ ॥

धम्म सउच्च सल्लकयचाये। धम्म सउच्च सुणिम्मलभाये ॥
धम्म सउच्च कसायअहावे। धम्म सउच्च ण लिप्पइ पावे ॥ ४ ॥

अर्थ—माया मिथ्या और निदान इन तीनों शल्योंके त्याग करनेसे शौचधर्म होता है तथा आत्माके निर्मल परिणाम होनेसे शौचधर्म होता है। क्रोध मान माया और लोभ इन चारों कषायोंका अभाव होनेसे शौचधर्म होता है तथा पापरूपपंकसे लिप्त न होना ही शौचधर्म है ॥ ४ ॥

अहवा जिणवरपुज्जविहाणे । णिम्मलफासुयजलकय ण्हाणे ॥
तंपि सउच्च गिहच्छह भासिउ।णवि मुणिवरह कहिव लोयासिउ।।५।।

अर्थ—निश्चय शौचका कथन करके अब आचार्य लौकिक शौच कहते हैं कि—अथवा जिनेन्द्रदेवके पूजादिक विधानोंमें निर्मल प्रासुक जलसे जो स्नान करना है, वह भी ग्रहस्थोंके लिये शौचधर्म कहा है। लोकमें प्रचलित स्नानादिक शौच ग्रहस्थोंके ही लिये है, मुनियोंके लिये नहीं है ॥ ५ ॥

घत्ता।

भउ मुणिवि अणिच्चु धम्म सउच्च पालिज्जइ एयग्गमणि।
सुहमग्गसहायउ सिवपयदायउ अण्ण म चिंतइ किंपि खणि ॥६॥

अर्थ—इस संसारको अनित्य जानकर एकाग्र मनसे इस शौचधर्मका पालन करो। यह शौचधर्म शुभमार्गका सहाय करनेवाला है और मोक्षका देनेवाला है। इसलिये इसको छोड़कर अन्य किसीका क्षणभर भी चिन्तवन मत करो। इसीका चिन्तवन अहर्निश करो॥ ६॥

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ५॥

अथ संयमधर्माङ्गम्।

संयमं द्विविधं लोके कथितं मुनिपुङ्गवैः।
पालनीयं पुनश्चित्ते भव्यजीवेन सर्वदा॥ ६॥

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा। ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मा-

ङ्गाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय पुष्पं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय नैवेद्यं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय दीपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय धूपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय फलं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

अर्थ—मुनियोंमें श्रेष्ठ ऐसे गणधरादिक देवोंने संयम दो प्रकारका कहा है । एक बाह्य संयम और दूसरा आभ्यन्तर संयम । सो भव्यजीवोंको अपने चित्तमें दोनों प्रकारका संयम सदा पालन करना चाहिये॥६॥

संजमु जणि दुल्लहु तं पाविल्लहु जो छंडइ पुण मूढमई ।
सो भमइ भवावलि जरमरणावलि किं पावेसइ पुण सुगई ॥ १ ॥

अर्थ—इस संसारमें संयमका प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है, इसलिये इस संयमको पाकर जो छोड़ देता है, वह महामूर्ख है और वह जन्ममरणकी संततिरूप संसारकी अगणित परंपरामें चिरकालतक परि-

भ्रमण करता है। और इसतरह संयम रहित संसारमें परिभ्रमण करते हुएको श्रेष्ठ गति फिर कैसे मिल सकती है? कभी नहीं, इसलिये संयमको पाकर फिर नहीं छोड़ना चाहिये ॥ १ ॥

संजमु पंचेंदियदंडणेण। संजमु जि कसाय विहंडणेण ॥
संजमु दुद्धरतवधारणेण। संजमु रसचाइवियारणेण ॥ २ ॥

अर्थ—स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु और श्रोत्र इन पांचों इन्द्रियोंको वश करनेसे संयम होता है। क्रोधादिककषायोंके खंडन करने अर्थात् नाश करनेसे संयम होता है। दुर्द्धर (जो कठिनतासे धारण किया जाय ऐसे) तपके धारण करनेसे संयम होता है और तिक्त कटु कषाय मधुर आदिक रसोंके त्यागकरने और त्यागके विचार करनेसे उत्तमसंयम धर्म प्राप्त होता है ॥ २ ॥

संजमु मणपसरहथंभणेण। संजमु गुरुकायकिलेसणेण ॥

संजमु उववासविजंभणेण । संजमु मणुपरिगह चायएण ॥ ३ ॥

अर्थ——चंचलमनका प्रसार रोकनेसे संयम होता है। अत्यन्त काय-क्लेश करनेसे संयम होता है। उपवास बेला तेला आदि करनेसे संयम होता है और मनके परिग्रह अर्थात् आभ्यन्तर परिग्रहके त्याग करनेसे संयम होता है ॥ ३ ॥

संजमु तसथावररक्खणेण। संजमु सुत्तत्थपरिक्खणेण ॥
संजमु तणुजोयणियंतणेण । संजमु बहुगमणचयंतणेण ॥ ४ ॥

अर्थ——त्रस और स्थावर जीवोंकी रक्षा करनेसे संयम होता है। सूत्रोंके अर्थकी परीक्षा करनेसे अर्थात् पठन पाठन और विवेचन कर-नेसे संयम होता है। काययोगके व्यापारका निरोध करनेसे संयम होता है और अधिक गमनका त्याग अर्थात् थोड़ा परिमित गमन करनेसे भी संयम होता है ॥ ४ ॥

संजमु अणुकंपकुणंतएण । संजमु परमत्थवियारणेण ॥
संजमु पोसइ दंसण हु पंथु । संजमु निच्छय णरुमोक्खपंथु ॥५॥

अर्थ—अनुकंपा अर्थात् दया करनेसे संयम होता है । और परमार्थका विचार करनेसे संयम होता है । यह संयम सम्यग्दर्शनके मार्गको पुष्ट करता है और निश्चयनयसे मनुष्यकेलिये मोक्षका मार्ग संयम ही है ॥५॥

संजमुविणु णरभव सयलु सुण्ण । संजमुविणु दुग्गइ जिय उपण्ण ॥
संजमुविणु घडिय म इच्छ जाउ । संजमुविणु विहलिय अत्थि आउ ॥६॥

अर्थ—विना संयमके मनुष्यभव ही व्यर्थ है । अर्थात् संयम धारण करनेकेलिये इन्द्रादिकदेव मनुष्यपर्याय पानेकी इच्छा करते रहते हैं । इसलिये मनुष्यभवको पाकर जो संयम धारण नहीं किया तो उसका यह जन्म व्यर्थ ही गया । इसी संयमके बिना यह जीव सदा दुर्गतिमें उत्पन्न होता है । इसलिये इस जीवको सदा ऐसा चिन्तवन करना

चाहिये कि विना संयमके मेरी एक घडी भी व्यर्थ न जावे । क्योंकि विना संयमके यह आयु भी निष्फल है ॥ ६ ॥

घत्ता ।

इहभवि परभवि संजमु सरणु हुज्जउ जिणणाहें भणियं ।
दुग्गइसरसोसण खरकिरणोसण जेण भवारि विसमु हणिओ॥७॥

अर्थ—श्रीजिनेन्द्रदेवने ऐसा कहा है कि मनुष्यको इसभव और परभवमें संयम ही शरण है । दुर्गतिरूप सरोवरके शोषण करनेके लिये यह तीव्र किरण सूर्यके समान है । संसाररूपी विषम शत्रु इसी संयमके द्वारा नाश किया जाता है ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्माङ्गाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

अथ तपोधर्माङ्गम् ।

द्वादशं द्विविधं चैव बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
स्वयं शक्तिप्रमाणेन क्रियते धर्मवेदिभिः ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा—ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय पुष्पं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय नैवेद्यं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय दीपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय धूपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय फलं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

अर्थ—बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे तपके दो भेद होते हैं तथा आभ्यन्तरके छह और बाह्यके छह इसतरह कुल बारह भेद होते हैं। सो धर्म जाननेवाले भव्य पुरुषोंको यह उत्तम तप अपनी अपनी शक्तिके

अनुसार करना चाहिये ॥ ७ ॥

णरभवपावेप्पिणु तच्चु मुणेप्पिणु खंचिवि पंचेंदिय समणु ।
णिव्वेउ पमंडिवि संगइछंडिवि तउ किज्जइ जाए वि वणु ॥ १ ॥

अर्थ—मनुष्यभवको पाकर समस्त तत्त्वोंका ज्ञान सम्पादन करना चाहिये और फिर पांचों इन्द्रिय और मनके व्यापारको रोककर वैराग्य धारण कर समस्त परिग्रहको छोड़ना चाहिये और पश्चात् बनमें जाकर यह उत्तमतप करना चाहिये ॥ १ ॥

तं तउ जहिं संगइ छंडिज्जइ । तं तउ जहिं मयणु वि खंडिज्जइ ॥
तं तउ जहिं णग्गत्तणु दीसइ । तं तउ जहिं गिरिकंदरि णिवसइ ॥२॥

अर्थ—वह तप जहां बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहका त्याग किया-जाता है वहीं होता है । वह तप जहां कामदेव वशमें किया जाता है वहां होता है । वह तप वहीं है कि जहां साक्षात् दिगम्बरपना दिखाई पड़े

अर्थात् बिना दिगम्बर मुद्राके तप नहीं होसकता। और तप वहीं है कि जिसके करनेमें पहाड़की गुफाओंमें निवास करना पड़े ॥ २ ॥

तं तउ जहिं उपसग्ग सहिज्जइ। तं तउ जहिं एयाइ जिणिज्जइ ॥
तं तउ जहिं भिक्खइ भुंज्जिजइ।सावयगेहिं कलिय गमिज्जइ ॥ ३ ॥

अर्थ—जिसमें अनेक प्रकारके उपसर्ग सहन किये जाते हैं वही तप है। तप वह है जहां रागादिक विभाव परिणाम क्षय होते हैं। और जिसमें योग्य कालमें श्रावकके घर जाकर भिक्षा भोजन किया जाता है वही तप है ॥ ३ ॥

तं तउ जत्थ समिदिपरिपालणु। तं तउ गुत्तित्तयहिं णिहालणु ॥
तं तउ जहिं अप्पापरवुज्झइ। तं तउ जहिं भवमाणु जि उज्झइ ॥४॥

अर्थ—जिसमें पाचों समितियोंका पालन किया जाता है वह तप है तथा। जिसमें मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्तिका पालन किया जाता

है वह तप है। जिसमें अपना आत्मा और आत्मासे भिन्न शरीरादिक पुद्गलोंका ज्ञान होता है। वह तप है, और जिसमें संसारके बढानेवाले मान माया क्रोध लोभादिकका त्याग किया जाता है वह तप है ॥ ४ ॥

तं तउ जहिं ससरूप मुणिज्जइ। तं तउ जहिं कम्महँगण खिज्जइ ॥
तं तउ जहिं सुरभत्तिपयासहिं। पवयणत्थभवियणहँ पभासइ ॥ ५॥

अर्थ—जिसमें केवल आत्माके स्वरूपका ज्ञान होता है उसे तप कहते हैं। जिसमें निखिल कर्मोंके समूह नाश होते हैं उसको तप कहते हैं। तप वही है कि जिसकी इन्द्रादिक देव भी भक्ति प्रगट करें स्तुति करें। तथा भव्यपुरुषोंके उपकारके लिये जो शास्त्रोंको व शास्त्रोंके अर्थको सुनाना पढना पढाना भी तप है ॥ ५ ॥

जेण तवे केवलु जि उपज्जइ। सासइ सुक्ख णिच्च संपज्जइ ॥ ६ ॥

अर्थ—तप वही प्रशंसनीय है कि जिसके द्वारा केवलज्ञान ही

उत्पन्न हो और नित्य अविनाशी मोक्षसुखकी प्राप्ति हो ॥ ६ ॥

घत्ता ।

बारहविह तववरु दुग्गइपहहरु तं पुज्जिज्जइ थिरमणणे ।
मच्छरुमउछंडिवि करणइ दंडिवि तं पि धरिज्जइ गउर विणा॥७॥

अर्थ—यह श्रेष्ठ बारह प्रकारका तप दुर्गतियोंके मार्गको हरण करने वाला है। इसलिये स्थिरमनसे इसकी पूजा करनी चाहिये तथा मत्सरता और मदको छोड़कर पांचों इन्द्रियोंको वशमें करकें यह उत्तम तप गौरवरहित पुरुषोंको धारण करना चाहिये ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्माङ्गाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

अथ त्यागधर्माङ्गम् ।

चतुर्विधाय संघाय दानं चैव चतुर्विधम् ।
दातव्यं सर्वदा सद्भिश्चिन्तकैः पारलौकिकैः ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय पुष्पम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय नैवेद्यं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय दीपम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय धूपम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय फलम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

अर्थ—आहारदान औषधदान अभयदान और ज्ञानदान ऐसे दान चार प्रकारका है। सो परलोकका चिन्तवन करनेवाले सज्जनोंको उक्त चारों प्रकारका दान मुनि अर्जिका श्रावक और श्राविकाओंके ऐसे चार प्रकारके संघकेलिये सदा देना चाहिये ॥ ८ ॥

चाउ वि धम्मंगउ तं जि अहंगउ णियसत्तिय भुत्तिइ जणहु ।
पत्तहँ सुपवित्तहँ तवगुणजुत्तहँ परगइसंवलु तं मुणहु ॥ १ ॥

अर्थ—दानदेना भी धर्मका एक अंग है इसलिये इसको भक्तिपूर्वक

अपनी शक्तिके अनुसार पूर्णरीतिसे करना चाहिये और तप और गुणों-कर सहित ऐसे पात्र और सुपात्रके लिये सदा करना चाहिये। दान देना ही पर गतिकेलिये पाथेय (मार्गमें खाने योग्य पदार्थ) है ऐसा जानो ॥१॥

चाए अवगुणगण जि उहट्टइ। चाए णिम्मल कित्ति पवट्टइ ॥
चाए अरिगण पणवहि पाए। चाए भोगभूमिसुह जाए ॥ २ ॥

अर्थ—दानदेनेसे समस्त अवगुणोंका समूह सहज्ज ही नाश हो जाता है। दान देनेसे चारों ओर निर्मल कीर्ति फैलती है। दानदेनेसे शत्रु-समूह भी पैरोंपर पड़कर नमस्कार करता है और दान देनेसे भोगभूमिके सुख मिलते हैं ॥ २ ॥

चाए विहिजइ णिच्चु जि विणयं। सुहवयणइ भासे पुण पणयं ॥
अभय दाणु दिज्जइ पहिलाउ। जिम णासइ परभवदुहपारउ ॥ ३ ॥

अर्थ—दान देनेमें नित्य ही विनय प्रगट करनी चाहिये और प्रेम-

पूर्वक शुभ वचन कहने चाहिये । चारों दानोंमें सबसे प्रथम अभय दान देना चाहिये जिससे परभवके समस्त दुःखसमूहोंका नाश होवें । अर्थात् परभवके दुःख दूर करनेवाला अभयदान ही है इसलिये यह प्रथम अर्थात् प्रधान दान कहा गया है ॥ ३ ॥

सत्थदान वीयज पुण किज्जइ । णिम्मलणाण जेण पाविज्जइ ॥
ओसह दिज्जइ रोयविणासणु । कहवि ण पिच्छइ वाहिपयासणु ॥४॥

अर्थ—दूसरा दान शास्त्रदान अर्थात्—शास्त्र प्रदान करना विद्या पढाना, पढते हुएको सहायता करना, पाठशाला खोलना आदि करना चाहिये कि जिससे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति हो क्योंकि—शास्त्रदान वा विद्यादानसे निर्मल केवल ज्ञानकी प्राप्ति होती है । तीसरा समस्त रो-गोंको नाश करनेवाला औषधदान देना चाहिये । कि जिससे किसीतरहकी आधि व्याधि उत्पन्न न हो अर्थात् औषध दान देनेसे सब आधि

व्याधि रोगादिक दूर हो जाते हैं ॥ ४ ॥

आहारे धणरिद्धि पवड्ढइ। चउविउ चाउ जि एहुपवड्ढइ ॥
अहवा दुट्ठवियप्पह चाए। चाउ जि एहु मुणहु समवाए ॥५॥

अर्थ—आहार दान देनेसे धन ऋद्धि आदिककी वृद्धि होती है। इसप्रकार अभयदान शास्त्रदान औषधदान और आहारदान ये चारों ही दान देनेचाहिये। यह व्यवहारत्यागका स्वरूप कहा। अब अथवा करके निश्चयत्यागका स्वरूप कहते हैं कि साम्यपरिणामोंसे जो दुष्टविकल्पोंका त्याग करना है वही उत्तमत्याग है ऐसा जानो ॥ ५ ॥

घत्ता।

दुहियहिं दिज्जइ दाणु किज्जइ माणु जि गुणियणहं।
दय भावियइ अभंग दंसणु चिंतइ भवियणहं ॥ ६ ॥

अर्थ—संसारमें जो दुःखी जीव हैं उनको दान देना चाहिये और

जो गुणी पुरुष हैं अर्थात् जो सम्यग्दर्शनादि गुणोंकर सहित हैं उनका विशेष सत्कार करना चाहिये । समस्त जीवोंपर अटल दयाकी भावना होनी चाहिये और भव्यजनोंके दर्शनकी सदा अभिलाषा रखनी चाहिये । यही त्याग धर्म है ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

अथाकिंचन्यधर्माङ्गम् ।

चतुर्विंशतिसंख्यातो यः परिग्रहभेदतः ।
तस्य संख्या प्रकर्त्तव्या तृष्णारहितचेतसा ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमाकिञ्चिन्यधर्माङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा। ॐ ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्माङ्गाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्माङ्गाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्माङ्गाय पुष्पं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्माङ्गाय नैवेद्यं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमा-

किंचन्यधर्मांङ्गाय दीपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांङ्गाय धूपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांङ्गाय फलं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामि ॥९॥

अर्थ—जो बाह्य आभ्यन्तर परिग्रहके भेदसे चौवीसप्रकारका परिग्रह कहा है उसका नियम तृष्णारहित चित्त होकर करना चाहिये ॥९॥

आकिंचणु भावहु अप्पहु झावहु देहहु भिण्णहु णाणमओ ।
णिरुवमगयवण्णउ सुहसंपण्णउ परमअतिंदिय विगयभओ ॥१॥

अर्थ—शरीरसें भिन्न, ज्ञानस्वरूप, उपमारहित, बर्णगंधादिक रहित, सुखसे सम्पन्न, परम अतीन्द्रिय और भयादिकसे रहित आत्माका ध्यान करो और यही अर्थात् शुद्ध आत्माका ध्यान करना ही आकिञ्चन्य धर्म है ऐसा चिन्तवन करो ॥ १ ॥

आकिंचणुबउ संगहँ णिवित्ति । आकिंचणुबउ सुहझाणसत्ति ॥
आकिंचणुबउ वियलियममत्ति । आकिंचणु रयणत्तयपवित्ति ॥ २ ॥

अर्थ—समस्त परिग्रहका त्याग करना आकिंचन्यव्रत है तथा आत्मामें शुभध्यानकी शक्ति प्रकट होना सो आकिंचन्यव्रत है। ममत्व परिणामोंका त्याग करना अर्थात् चेतना अचेतनात्म द्रव्योंके अर्जन रक्षणादिककी इच्छाका त्याग करना आकिंचन्य व्रत है । और रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकी प्रवृत्ति करना अर्थात् इनको धारण करना आकिंचन्यव्रत है ॥ २ ॥

आकिंचणु आउञ्चियइ चित्त। पसरंतउ इंदियवणु विचित्तु ॥
आकिंचणु देहहु णेहचत्तु। आकिंचणु जं भवसुहविरत्तु ॥ ३ ॥

अर्थ—इन्द्रियरूपी विचित्रवनमें यथेष्ट विहार करतेहुए मनको संकुचित करना अर्थात् मनकी प्रवृत्तिको रोकना सो आकिंचन्यव्रत है। तथा शरीरसे स्नेह (ममत्वपरिणाम) छोड़ना आकिंचन्यव्रत है। और संसारके सुखोंसे विरक्त होना अर्थात् संसारके सुखोंका और उनके

साधनोंका त्याग करना सो आकिंचिन्य व्रत है ॥ ३ ॥

तिणमत्तपरिग्गह जत्थ णत्थि । आकिंचणु सो णियमेण अत्थि ॥
अप्पा परमत्थवियारसत्ति । पढ्ढिज्जइ जिहिं परमेट्ठिभत्ति ॥ ४ ॥

अर्थ——जहां तृणमात्र भी परिग्रह नहीं है वहीं नियमसे आकिंचन्य-व्रत होता है । जहां परमार्थ अर्थात् शुद्ध आत्माके विचार करनेकी शक्ति प्रगट होती है तथा जहां पंच परमेष्ठीकी भक्ति पढी जाती है वही आकिंचन्यव्रत जानना ॥ ४ ॥

छंडिज्जइ जहिं संकप्प दुट्ठ । भोयणु वंधिज्जइ जहिं अणिट्ठ ॥
आकिंचणु धम्मु जि एम होइ । तं झाइज्जइ णिरु इत्थलोइ ॥ ५ ॥

अर्थ——जहां दुष्ट संकल्पोंका त्याग किया जाता है और अनिष्ट नीरस भोजन ग्रहण किये जाते हैं वही आकिंचिन्य धर्म है । इसलोकमें निरन्तर इसीका ध्यान किया जाता है ॥ ५ ॥

घत्ता ।

एयहु जि पहावें लद्धसहावें तित्थेसर सिवणयरि गया ।
गयकामवियारा पुण रिसिसारा वंदणिज्ज ते तेण सया ॥ ९ ॥

अर्थ—इसी आकिंचिन्यधर्मके प्रभावसे और इसीकी सहायतासे श्रीतीर्थंकर परमदेव मोक्ष पधारे हैं। तथा और भी जो कामदेवके विकारोंसे रहित ऋषीश्वर हैं वे भी इसी आकिंचिन्यधर्मके प्रभावसे सदा बंदनीय और पूज्य होते हैं ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ ब्रह्मचर्यधर्माङ्गम् ।

नवधा सर्वदा पाल्यं शीलसन्तोषधारिभिः ॥
भेदाभेदेन संयुक्तं सद्गुरूणां प्रसादतः ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्य-

धर्माङ्गाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय पुष्पं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नैवेद्यं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमब्रचह्मर्यधर्माङ्गाय दीपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय धूपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय फलं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

अर्थ—शील और सन्तोषके धारण करनेवाले भव्यजीवोंको श्रेष्ठ गुरुओंके प्रसादसे भेद तथा अभेदरूप नौ प्रकारका ब्रह्मचर्य सदा पालन करना चाहिये ॥ १० ॥

बंभव्वउ दुद्धरु धारिज्जइ वरु फेडिज्जइ विसयास णिरु ।
तिय सुक्खइरत्तउ मणुकरिमत्तउ तं जि भव्व रक्खेहु थिरु ॥ १ ॥

अर्थ—हे भव्यपुरुष हो ब्रह्मचर्यव्रत महा दुर्द्धर है इसलिये विषयोंकी आशाको दूर कर इसको भलेप्रकार अवश्य धारण करना चाहिये और स्त्रीसुखमें लीन हुए मदोन्मत्त मनरूपी हाथीसें रक्षा करके स्थिर करना चाहिये॥१॥

चित्तभूमि मयणु जि उप्पज्जइ । तेण जि पीडिउ करइ अकज्जइ ॥
तियहँशरीरइ णिंदिय सेवइ । णियपरणारि ण मूढउ वेयइ ॥ २ ॥

अर्थ—कामदेव चित्तरूपी भूमिमें उत्पन्न होता है उससे पीडित हुआ मनुष्य अन्याय और अकार्य करता है। स्त्रियोंके अत्यन्त निन्दित शरीरको सेवन करता है और वह मूर्ख फिर स्वस्त्री और परस्त्रीको भी नहीं देखता ॥ २ ॥

णिवडइ णरइ महादुख भुंजइ । सो हीणु जि वंभव्वउ भुंजइ ॥
इय जाणेप्पिणु मणवयकाये । वंभचेरु पालहु अणुराये ॥ ३ ॥

अर्थ—जो ब्रह्मचर्यव्रतका पालन नहीं करता वह नीच जीव नरकमें पडकर महादुःख भोगता है। ऐसा जानकर ब्रह्मचर्यव्रतको मनवचनकायकेद्वारा प्रेमपूर्वक पालन करो ॥ ३ ॥

तेण सहु जि लब्भइ भवपारउ । वंभं विण वउतउ जि असारउ ॥

बंभवेण विणु कायांकिलेसो । विहल सयल भासयइ जिणेसो ॥ ४ ॥

अर्थ—समस्त जीव इस ब्रह्मचर्यके होनेसे ही संसार समुद्रसे पार होते हैं ब्रह्मचर्यके विना व्रत करना तप करना सब व्यर्थ हैं। और विना ब्रह्मचर्यके समस्त काय क्लेश व्यर्थ हैं ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेवने कहा है॥४॥

बाहिरफरसेंदियसुह रक्खहु। परमबंभु अब्भंतर पिक्खहु ॥
एण उवाए लब्भइ सिवहरु । इम रइधू वहुभणइ विणइयरु ॥ ५ ॥

अर्थ—वाह्य स्पर्शनेन्द्रियसे आत्माकी रक्षा करो अर्थात् उससे बचो और आत्मामें ही परम ब्रह्मचर्यको देखो। **भावार्थ**—आत्मामें लीन होना ही परम ब्रह्मचर्य है सो बाह्य स्पर्शनेन्द्रियके सुखोंसे बचकर आत्मामें लीन होनेसे ही उसकी प्राप्ति हो सकती है । इसी उपाय से अर्थात् आत्मामें लीन होनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ऐसें रइधू नामा कवि अतिशय विनयके साथ वारंवार कहते हैं ॥ ५ ॥

घत्ता ।

जिणणाह महिज्जइ मुणिपणमिज्जइ दहलक्खणु पालियइ णिरु ।
भो खेमसींहसुय भव्वविणयजुय होलिव मण इह करहु थिरु ॥९॥

अर्थ—श्रीजिनेन्द्रदेव भी इस दशलाक्षणिकधर्मकी महिमा वर्णन करते हैं और श्रीमुनिराज भी इसको प्रणाम करते हैं इसलिये हे भव्य हो इसका नित्य पालन करो और अतिशय विनय सहित ऐसी श्रीखेमसिंहकी पुत्री होलीके समान अपने चित्तको स्थिर करो। भावार्थ—आचार्यने होलीका दृष्टान्त दिया है। होली श्रीखेमसिंहकी पुत्री थी इसने मनवचनकायपूर्वक दशलाक्षणिकव्रत पालन किये थे। इन व्रतोंका पालन जैसा होलीने किया है वैसा ही भव्य जीव पालन करो, ऐसा आचार्यका आशीर्वाद है ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

इति श्रीपंडितलालारामजीकृत भाषाटीकासहित दशलाक्षणिकधर्मजयमाला समाप्ता ।